12

मेरा विवाह, इंटर की परीक्षा और द्विरागमन

मेरी सगाई 1936 में ही प्रतापगढ़ (उत्तर प्रदेश) में हो गयी थी जब मैं मात्र 12 वर्ष का था परंतु विवाह 1941 के फरवरी मास में हुआ जब मैं कालेज में द्वितीय वर्ष की परीक्षा देने जा रहा था। मैं कालेज में पहुँचने के 5–6 महीने बाद ही कविरूप में बनारस के साहित्यिक समाज में प्रतिष्ठित हो चुका था और बेढबजी के संरक्षकत्व में हिंदी के मूर्धन्य कवि और समालोचकों की शीतल स्नेहमय छाया भी मुझे मिल रही थी। देखने में अपेक्षाकृत सुंदर और अल्पवय तथा रूप-रंग की विशिष्टता के कारण मैं अन्य विद्यार्थियों से थोड़ा अलग-थलग तो था ही, मेरी प्रसिद्धि ने उसमें चार चाँद लगा दिये। कविता की मेरी पहली पुस्तक निरालाजी की भूमिका और बेढबजी के आशीर्वाद के साथ प्रकाशित होकर धीरे-धीरे लोकप्रियता पा रही थी। अपने समवयस्क विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों के बीच तो मेरा यश फैल ही रहा था, काशी के अनेक परिवारों में भी मेरा आना-जाना होता था। किशोर वय, धनी परिवार का एकलौता बालक, सुंदर और कवि, ये सभी एक-से-एक प्रलोभन थे जो कुमारियों को और उनके अभिभावकों को मेरी ओर आकर्षित कर लेने को यथेष्ट थे। मैं भी प्रारंभ से ही सौंदर्यप्रेमी और रोमैंटिक रुचि का था। ऐसे माहौल में किसी किशोरी के प्रति मेरा मानसिक या भावनात्मक रूप से आकर्षित हो जाना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। जब सगाई के बाद मेरे विवाह की चर्चा गंभीर रूप से 1940 के दिसंबर में चलनी शुरू हुई तो मैं प्रबुद्ध हो चुका था और अपनी जीवन-संगिनी के चुनाव में भाग लेना चाहता था। मैं चाहता था कि मेरी पत्नी भी कालेज की पढ़ी-लिखी सुंदर, शोख किशोरियों जैसी चंचल और उन्मुक्त स्वभाव की हो। गाँव की, परदे में ढँकी, अनपढ़, पुरानपंथी बालिका, जिसे मैंने देखा तक न हो, मुझे स्वीकार नहीं थी। मैंने सोच रक्खा था कि मैं अपनी भावी पत्नी को देखे बिना विवाह नहीं करूँगा। मुझे अपने रूप-रंग का भी अभिमान था जो ऐसी

अवस्था में प्रत्येक नवयुवक के हृदय में होता है। मेरी होनेवाली पत्नी अपनी विधवा माँ की सबसे छोटी बेटी थी। तन-मन से स्वस्थ वह बाला अपने बाल्यकाल में लड़कों के कपड़े पहनकर, हैट लगाकर तिपहिया साइकिल चलाती हुई खेलती तो माता पुत्र न होने की कमी पूरी करने के लिए प्यार से उसे कृष्णा के स्थान पर किसन सिंह कहती। एक बार कलकत्ते में एक संभ्रान्त परिवार के साँवले लड़के को दिखाकर माँ ने पूछा कि वह उससे शादी करेगी क्या, तो 7 वर्षीया कृष्णा ने उत्तर दिया, 'नहीं, कभी नहीं, वह तो काला है। मैं तो गोरी हूँ, गोरे लड़के से ही ब्याह करूँगी।' बात हँसी की ही थी पर माँ के मन में बैठ गयी। उसने निश्चय किया कि वह अपनी पुत्री का विवाह ऐसे वर से ही करेगी जो रूप-रंग में उसकी टक्कर का हो। इस बात की चर्चा माँ ने अपनी एक सहेली से की तो वह बोली कि गोरी लड़कियों को साँवला वर ही मिलता है। साँवली लड़की को भले ही गोरा वर मिल जाय। राम-सीता और कृष्ण-राधा के अतिरिक्त समाज के कई अन्य जोड़ों को इंगित करके उसने अपनी धारणा सिद्ध कर दी। मेरी होनेवाली सास अपनी बात पर अड़ी रही और दोनों सहेलियों में इस बात पर दो-दो गिन्नियों की होड़ लग गयी।

एक बार मेरी होनेवाली सास जगदीश पुरी से लौटकर श्राद्ध करने के लिये गया आई थी। गया में चौक के विशाल भवन को देखकर पूछने पर उसे पता चला कि वह किसी खंडेलवाल की हवेली है। सड़क के एक कोने पर रुककर उसने पुछवाया कि हवेलीवालों के यहाँ कोई विवाहयोग्य लड़का है क्या। मेरे पिताजी गद्दी पर बैठे हुये थे –– 'यों ही राह चलते लोग लड़का पूछने आ जाते हैं', उन्होंने सोचा और अवज्ञापूर्वक मेरी जन्मकुंडली की एक छपी हुई प्रति दे दी। लड़का देखने की इच्छा सुनकर उन्होंने कहला दिया कि 'लड़का यहाँ नहीं है' जबकि मैं गया में ही मौजूद था।

कुछ दिनों बाद प्रतापगढ़ से आया हुआ एक व्यक्ति मुझे सुबह के समय घर के दरवाजे पर मिला। मैंने उसे ससम्मान बैठक में ठहराया और टहलने के लिए नदी पार के अपने बाग़ में चला गया। वस्तुतः वह मुझे ही देखने आया था। उसकी रिपोर्ट के आधार पर मेरी सगाई तय हो गई यद्यपि मेरी सास स्वयं मुझे देख नहीं पायी थी।

लड़की के भाई, उसकी माँ के दत्तक पुत्र श्री दुर्गाप्रसादजी ने आकर तिलक कर दिया। दुर्भाग्यवश वापस जाने के कुछ समय बाद उनका देहांत हो गया। ऐसे दुःख और संकट की घड़ी में मेरे परिवारवालों ने लड़की की दुखियारी विधवा माँ की हिम्मत बँधाई और आगे होनेवाले कानूनी मामलों में भी सहायता दी जिसका विवरण आगे आयेगा।

इसके कुछ दिनों बाद, एक बार मेरी सास अपनी मौसी के यहाँ रानीगंज गईं थी जहाँ मेरी बड़ी बहन गिल्ली की भी ससुराल है। मेरी बहन के गहरे काले रंग को देखकर वह सोच-विचार में पड़ गई कि इनका सगा भाई भी अधिक नहीं तो थोड़ा-बहुत तो इनके जैसा होगा ही। वह कुछ अफसोस के-से स्वर में बोली, 'मैं तो धोखा खा गयी। मेरी लड़की तो चम्पा की कली है।' गिल्लीबाई समझ गईं और आश्वासन देते हुये बोली, 'मेरे रंग पर मत जाइये, मेरा भाई भी गुलाब का फूल है।'

1940 की बात है। मैं बेढवजी के साथ हिंदी साहित्य सम्मेलन के पूना के अधिवेशन में भाग लेकर बनारस लौटा था। मेरे जन्मदाता पिताजी, मुझे गोद लेनेवाली माताजी, मेरे ताऊजी, तथा मेरी होनेवाली सास अपने निजी सेवक के साथ, बनारस आकर मेरी प्रतीक्षा में ठहरी हुई थी। वे सभी विवाह की तिथि निर्धारित करने के लिए आये हुए थे। मैंने कहा कि मैं बिना लड़की को देखे, विवाह नहीं करूँगा। यह सुनकर सब लोग सकते में आ गये। यह एक नयी समस्या खड़ी हो गई थी। मेरी सास किसी भी हालत में इसके लिए तैयार नहीं थी। उस समय समाज में लड़की दिखाने की प्रथा भी नहीं थी। इसमें उसकी हेठी होती क्योंकि वह प्रतापगढ़ में मारवाड़ी-समाज की चौधरानी समझी जाती थी। हम दोनों अपनी-अपनी जिद पर अड़ गये। बात अनिश्चित रह गई और मेरा परिवार गया और मेरी सास प्रतापगढ़ लौट गयी।

चार-पाँच दिनों के बाद प्रतापगढ़ से हमारे परिवार का मुनीम गुलाबचंद, जो प्रतापगढ़ में मेरे होनेवाले साले दुर्गाप्रसादजी की मृत्यु के बाद, मेरी सास के स्टेट को कोर्ट ओफ वार्ड्स कर लिये जाने पर उसकी मुक्ति के लिए पैरवी कर रहा था, आया और मुझे लड़की दिखाने को कहकर इलाहाबाद ले गया। सगाई के बाद लड़की दिखाने की खबर समाज को न लगे इसलिये तीसरी जगह, इलाहाबाद की चमेली देवी धर्मशाला में यह कार्यक्रम निश्चित किया गया था। मैं वहाँ कुर्सी पर बैठा था। मेरी होनेवाली सास मुझसे बात कर रही थी। तभी पड़ोस के घर से किसी

अत्यन्त गोरी पर भद्दे नाकनक्शवाली लड़की ने झाँका। 'उसे देखिये, 'मेरी लड़की बिल्कुल वैसी ही है,' मेरी सास बोली। शायद उन्हें अब भी उम्मीद थी कि मैं लड़की देखने की अपनी ज़िद छोड़ दूँगा। मैंने मन ही मन प्रण किया कि यदि उनकी लड़की ऐसी ही है तो मैं हरगिज विवाह नहीं करूँगा। मेरी सास के उठकर जाने के थोड़ी देर बाद मेरी भावी पत्नी धर्मशाला के चौक में लगे नल में से लोटे में पानीं भरने को आयी। मुनीम ने बताया कि यही लड़की है। सच में वह चंपा की कली ही थी। उस पर मेरा वही दोहा चरितार्थ हो गया —

कच सँभाल, अंचल उलट, पलट दृष्टि, मुँह मोड़
जाते-जाते ले गयी, हृदय सुमन-सा तोड़

मैं उसके रूप पर मुग्ध हो गया और बादलों पर तिरता-तिरता बनारस लौट आया। पत्नी को देखने के उपर्युक्त प्रसंग के पूर्व की एक घटना और याद आ रही है। अपने विवाह से पूर्व मैं प्रतापगढ़ अपने चचेरे भाई के साले के विवाह में सम्मिलित होने के लिये गया था। वहाँ मेरी भावी सास ने मुझे घर पर बुलाया। वह पड़ोस की स्त्रियों से घिरी हुई थी। उसने मेरा तिलक करके, शगुन में दो गिन्नियाँ दीं। तभी सहसा उपस्थित महिलाओं में से एक महिला उठकर आगे आई और मेरी सास का नाम लेकर बोली 'ले बाई सुरजी, मैं शर्त हार गई' और उन्होंने दो गिन्नियाँ मेरे सामने मेरी सास के हाथ में रख दीं। बाद में मुझे पता चला कि यह वही महिला थी जिससे मेरी सास ने अपनी पुत्री के लिये उसके समान ही गौरवर्ण का पति ढूँढने की 2 गिन्नियों की शर्त लगाई थी जो शर्त आज मेरी सास जीत गई थी।

मेरा विवाह

मेरे विवाह की तिथि निश्चित हो गई और मैं उसके लिये पढ़ाई से 4-5 दिनों का अवकाश लेकर गया आ गया। मुहर्रम के दिन थे। प्रतापगढ़ में उन दिनों बाजे के प्रश्न को लेकर हिन्दू-मुसलमानों में तनातनी चल रही थी। बाजे-गाजे से बरात निकालने पर दुलहे को मार डालने की धमकी मिल चुकी थी। 'इस धमकी से डरकर बाजा न बजाने या विवाह सरकाने की स्थिति में समाज सहयोग नहीं करेगा,' दूसरी ओर, हिंदुओं की ओर से यह चेतावनी दी गयी थी। पति-पुत्र-विहीना मेरी सास की साँप-छछुन्दर

की गति थी। इधर कूआँ था तो उधर खाई। तनातनी के कारण नगर में बाजे-गाजे पर रोक लगा दी गयी थी परंतु हिंदू-समाज विवाह में बाजा बजाने पर अड़ा हुआ था। मैं विवाह के लिए गया आ चुका था। संयोग से उसी समय मेरे ताऊ गयाप्रसादजी के पुत्र बनारसीलालजी टायफायड से भीषण रूप से आक्रांत हो गये। उनके जीवन की आशा भी जाती रही। दूर-दूर से आये मेहमान वापस लौट गये और प्रतापगढ़ विवाह के स्थगन का तार दे दिया गया। प्रतापगढ़ में हिंदुओं ने समझा कि मुसलमानों द्वारा फसाद किये जाने की आशंका से भयभीत होकर मेरी सास ने बीमारी का बहाना बनवाकर विवाह स्थगित करवा दिया है। इसमें उन्होंने अपनी हेठी समझी। उनके जासूस गया भेजे गये और मेरे बीमार भाई की भीषण दशा देखकर ही इस बात की यथार्थता को स्वीकार किया जा सका। भगवान की दया से मेरे भाई की दशा सुधरने लगी और 10-15 दिनों में वे संकट से मुक्त हो गये। 15-20 दिनों के बाद विवाह की दूसरी तिथि निश्चित की गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि मुझे परीक्षा के पूर्व का प्रायः एक मास का बहुमूल्य समय गया में व्यर्थ बिता देना पड़ा। अब मेरी इंटर की परीक्षा में केवल महीने-डेढ़ महीने का समय शेष था। परंतु करता क्या, कोई और चारा नहीं था। विवाह के बाद गया से लौटकर मैं एक साथ तीन-तीन ट्यूटरों की सहायता से अलग-अलग विषयों की छूटी हुई पढ़ाई पूरी करने की चेष्टा में लग गया। अंग्रेजी पढ़ाने को तो बेढबजी थे ही।

इंटर की परीक्षा और मेरी भावुकता

मैं इंटर साइंस में गणित का विद्यार्थी था जिसमें अस्पष्ट उत्तर या केवल इधर-उधर की बातों से काम नहीं चल सकता। या तो आप खाई के इस पार हैं या उस पार। प्रत्येक उत्तर पर या तो आप को पूरे अंक मिलेंगे या शून्य। शैली और कल्पना शक्ति का उपयोग भौतिक शास्त्र, गणित, रसायन शास्त्र जैसे विषयों में नहीं किया जा सकता। विवाह में समय गँवाने के बाद इंटर की परीक्षा की तैयारी अल्प समय में पूरी करने के निमित्त से, जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, मैंने कई शिक्षकों से ट्यूशन पढ़ना प्रारंभ किया, और स्वयं भी चौबीस घंटों में सोलह-सत्तरह घंटे अविराम परिश्रम करने लगा। इससे थोड़ा आत्मविश्वास जागा। और प्रश्नपत्र तो मैं ठीक से दे पाया परंतु रसायन-शास्त्र की व्यावहारिक परीक्षा में भारी संकट में फँस गया। उस परीक्षा के लिए मैंने रात भर

जागकर लवणों के जाँच की चार-पाँच पन्ने लंबी तालिका कंठस्थ कर रक्खी थी। परीक्षा-भवन में जब मुझे जाँच करने को कई प्रकार के लवण तथा अन्य रसायन दिये गये तो स्मरण की हुई सारी जाँच की प्रक्रिया मेरे मस्तिष्क से सहसा यों विलुप्त हो गयी जैसे किसीने उसे धोकर साफ कर दिया हो। यदि मैं रसायन शास्त्र की व्यावहारिक परीक्षा में विफल हो जाता तो अन्य सब प्रश्नपत्रों में पास होने पर भी फेल ही रहता। मैं जीवन में कभी परीक्षा में फेल नहीं हुआ था और यह आघात मेरी शक्ति से बाहर होता। परीक्षा-कक्ष भवन की ऊपर की मंजिल पर था। मैं कक्ष से बाहर निकल आया और बरामदे की ओर बढ़ा। एक डिमोंस्ट्रेटर जो परीक्षा का निरीक्षण कर रहा था, मुझे परीक्षा प्रारंभ होते ही बाहर निकलते देखकर, मेरे निकट दौड़ता हुआ आया और बोला– 'क्या बात है, तुम बहुत परेशान दिखाई देते हो।' मैंने कहा कि मैं भवन से कूदकर आत्महत्या करने जा रहा हूँ। मैंने रसायनों की जाँच की सारी प्रक्रिया कंठस्थ कर ली थी परंतु वह सब मेरे मस्तिष्क से लुप्त हो गयी है। मैं फेल होने का अपमान नहीं सह सकता।' डिमोंस्ट्रेटर सौभाग्य से कविता का प्रेमी था और मेरी कविताएँ सुन चुका था। उसने कहा, 'घबराओं मत, मेरे साथ आओ। मैं तुम्हारी कविताओं का प्रशंसक हूँ, यह कहते हुए वह मुझे वापस परीक्षा-कक्ष में ले आया और उसने, दिये हुए 100 अंक के पाँच लवणों में से तीन की जाँच करके, मुझे उत्तर बता दिये जिन्हें लिखकर मैं 60 अंकों के लिए निश्चिंत हो गया और परीक्षा में उत्तीर्ण होने को आश्वस्त हो गया। मजे की बात यह है कि इसके तुरंत बाद ही मुझे भूली हुई लवणों के जाँच की तालिका भी याद आ गयी।

अब मैं अपने विवाह के बाद गौने के प्रसंग पर आता हूँ। विवाह के साल, अक्टूबर 1941 में ही मेरा द्विरागमन था। गया से एक मुनीम, अपने छोटे भाई वासुदेव और एक बंदूकधारी प्यादे के साथ प्रतापगढ़ से मैं गौना करा के लौट रहा था। बनारस स्टेशन से दूसरी ट्रेन गया के लिए पकड़नी थी। वहाँ सेकंड क्लास के वेटिंग रूम में केवल मैं सपत्नीक उहरा था तथा अन्य लोग थर्ड क्लास के वेटिंग रूम में चले गये थे। आज का सेकंड क्लास उन दिनों थर्ड क्लास कहलाता था और आज का फस्ट क्लास सेकंड क्लास के समान था। गया की ट्रेन का समय 4-5 घंटे बाद था अतः मैंने अपनी पत्नी से प्रस्ताव किया कि हम दोनों शहर में बेढबजी के घर पर चलें जहाँ पड़ोस में कमला कुमारीजी की पुत्रियों से भी उसका परिचय करवा दूँ।

कमला कुमारीजी सुप्रसिद्ध कवयित्री सुभद्राजी की छोटी बहन थी और बेढ़बजी के साथ मेरा उनके यहाँ निरंतर आना-जाना रहता था। उनकी पुत्रियाँ, चिंता, गायत्री, खूखी नामक तीनों बहनों से मेरा हेलमेल था और मैने उनसे वादा किया था कि मैं अपनी पत्नी से उन्हें मिलवाऊँगा। समय भी यथेष्ट था। परंतु मेरी पत्नी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। यही नहीं, उसने कहा कि मैं सब के साथ, तीसरे दर्जे के वेटिंग रूम में उसे पहुँचा दूँ। मैं इस पर नाराज होकर उसे तीसरे दर्जे के वेटिंग रूम में छोड़कर और मुनीम तथा अन्य सबों को यह कहकर कि मैं बाद में आऊँगा, वहाँ से बेढबजी के घर पर चला आया। वे मुझे देखकर चौंक उठे। मैंने उनसे कहा कि मेरा अपनी पत्नी से झगड़ा हो गया है। मैं उसे स्टेशन पर छोड़ आया हूँ। वे गंभीर हो गये। उस समय उन्होंने कुछ नहीं कहा क्योंकि मैं बहुत अधिक क्रोध की मुद्रा में था। दूसरे दिन सुबह उन्होंने पूछा 'अब तुम्हारा क्या कार्यक्रम है? यदि मेरी बात मानो तो मैं यही सलाह दूँगा कि तुम गया, अपने घर लौट जाओ।?' विश्वविद्यालय दशहरे की छुट्टियों के लिए बंद हो चुका था। होस्टल के मेरे साथी जानते थे कि मैं द्विरागमन कराने गया हूँ और छुट्टियों के बाद ही होस्टल में लौटूँगा। तीन-चार दिनों बाद ही लौटने का अर्थ था उनके बीच में भी अपनी स्थिति को हास्यास्पद बनाना और उनके विनोद का लक्ष्य बनना। बेढबजी ने बहुत समझाते हुए कहा कि तुम मेरे घर पर सारी छुट्टियाँ बिता सकते हो। यह एक प्रकार से तुम्हारा घर है परंतु तुम्हारे परिवार की चिंता को दूर करने तथा छुट्टियाँ नवोढ़ा पत्नी के साथ बिताने के लिए तुम्हें गया लौट ही जाना चाहिए। मेरा क्रोध उतर चुका था। एक दिन के बाद मैं गया चला गया। पत्नी ने मिलते ही पहला वाक्य कहा, 'अब कैसे आ गये ?' सिवा बेढ़बजी के आदेश-पालन की दुहाई देने के, मेरे पास और चारा ही क्या था !

मेरे भावुकतापूर्ण और अव्यावहारिक चरित्र को दिखाने के लिए इस अध्याय में वर्णित परीक्षा-भवन से कूदकर आत्महत्या करने की तथा पत्नी को द्विरागमन में बीच मार्ग में छोड़कर पलायन कर आने की घटनाएँ यथेष्ट प्रमाण हैं। मैंने जीवन में इस प्रकार के अनेक भावुकतापूर्ण कदम उठाये हैं जिन पर बाद में विचार करता हूँ तो हँसी आती है। भगवान ने ही उन मूखर्ताओं से मुझे उबारा है। अपने एक शेर में मैंने इस भाव को लक्ष्य करके लिखा है –

मैंने जिस ओर भी रखे थे बेसुधी में कदम
तूने उस ओर ही मंजिल का रुख सुधार लिया।